चंद्रशेखर आजाद

लड़े थे वो शेरों की तरह, ठंडा खून भी फौलाद हुआ था ,
कुछ सरफिरे लोगों ने, दी थी प्राणों की आहुति,
तब कहीं जाकर यह, देश आजाद हुआ था ।

'चंद्रशेखर आजाद' केवल एक नाम नहीं है यह वह महान विभूति थी, जिसने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए थे। 'चंद्रशेखर आजाद' भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के एक महान क्रांतिकारी थे। उनका जन्म 23 जुलाई 1906 को मध्य प्रदेश के अलीराजपुर जिले के भाबरा गांव में हुआ था। उनके पिता पंडित सीताराम तिवारी और माता जगरानी देवी थीं। प्रारंभिक शिक्षा काशी विद्यापीठ, वाराणसी से प्राप्त की और जल्द ही स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हो गए । क्योंकि उनके अंदर देश की स्वतंत्रता को लेकर एक अलग ही जज्बा था। इसलिए उन्होंने अपने नाम के पीछे 'आजाद' लगा दिया था।

आजाद ने सर्वप्रथम असहयोग आंदोलन में भाग लिया और पहली बार अंग्रेज पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार किया। उन्होंने अपना नाम 'आजाद', पिता का नाम 'स्वतंत्रता' और निवास 'जेल' बताया। उनकी इस दृढ़ता ने उन्हें 'आजाद' के नाम से प्रसिद्ध कर दिया।

स्वतंत्रता सेनानी चंद्रशेखर आजाद ने ने हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (॥स्न्क्र) के साथ मिलकर कई क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लिया, जिनमें काकोरी कांड मैं तो मानो देश के अंदर एक ज्वाला ही पैदा कर दी थी ।(1925), सांडर्स हत्याकांड (1928) और दिल्ली असेम्बली बम कांड धमाके की गूंज आज भी भारतवर्ष याद करता है। 27 फरवरी 1931 को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में जब वे पुलिस से घिर गए। आजादी का जज्बा इतना बड़ा था कि अंग्रेजों की गोलियों से मरना मंजूर नहीं था तो उन्होंने स्वयम को गोली मार ली और शहीद हो गए। उनके अदम्य साहस और वीरता के कारण उनका नाम आज भी भारत के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है।

धन्य थे वह देश के क्रांतिकारी और धन्य थी वह जवनियाँ,
समय के पृष्ठ -पृष्ठ पर गायी जाएंगी उनकी कहानियाँ।
चंद्रशेखर आजाद की पुण्यतिथि
पर उन्हें कोटि-कोटि नमन??

रचना चंदेल 'माही '
जिला- बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश

लैंगिक समानता : इंसाफ़, बराबरी और इंसानियत का पैग़ाम

लैंगिक समानता यानी जेंडर इक्वालिटी का मतलब है कि समाज में औरत और मर्द दोनों को बराबर हक़, इज़्ज़त, मौके और आज़ादी हासिल हो। यह महज़ एक सामाजिक नारा नहीं, बल्कि इंसाफ़, जम्हूरियत और इंसानियत की बुनियादी शर्त है। जब तक समाज में किसी शख़्स की क़दर उसके हुनर और किरदार के बजाय उसके लिंग के आधार पर की जाएगी, तब तक असली तरक़्क़ी मुमकिन नहीं है।

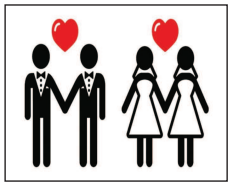

हमारे मुल्क भारत में सदियों से एक पितृसत्तात्मक निज़ाम रहा है, जहाँ मर्द को घर और समाज का सरपरस्त समझा गया और औरत को सीमित दायरे में रखा गया। कई दौर ऐसे रहे जब औरतों को तालीम, जायदाद, फैसले लेने और सार्वजनिक ज़िंदगी में हिस्सा लेने का पूरा हक़ नहीं दिया गया। बाल विवाह, दहेज, पर्दा और घरेलू हिंसा जैसी रिवायतों ने उनकी आज़ादी को महदूद किया। हालांकि वक़्त के साथ हालात बदले हैं, मगर पूरी बराबरी अभी भी एक मक़सद के तौर पर सामने है।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में कई समाज सुधारकों ने औरतों के हक़ में आवाज़ बुलंद की। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ़ जद्दोजहद की और औरतों की जान और इज़्ज़त की हिफ़ाज़त के लिए क़दम उठाए। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा विवाह और महिला तालीम का समर्थन किया। सावित्रीबाई फुले ने लड़कियों के लिए स्कूल खोलकर समाज को एक नई राह दिखाई। आगे चलकर डॉ. भीमराव आंबेडकर ने भारतीय संविधान में बराबरी और बुनियादी हक़ूक़ की गारंटी दी। संविधान के तहत हर नागरिक को समानता का अधिकार मिला और लिंग के आधार पर भेदभाव को ग़ैरक़ानूनी ठहराया गया।

कानूनी इंतज़ामात के बावजूद समाजी सोच में बदलाव उतनी तेज़ी से नहीं आया। आज भी कई घरों में बेटियों की तालीम को बेटों जितनी अहमियत नहीं दी जाती। उन्हें घर के कामकाज तक सीमित रखने की कोशिश की जाती है। दूसरी तरफ़, जो औरतें बाहर काम करती हैं, उन्हें दफ़्तरों में वेतन असमानता, तरक़्क़ी में रुकावट और कभी-कभी उत्पीड़न जैसी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। यह सब उस ज़हनियत का नतीजा है, जो मर्द को अफ़ज़ल और औरत को कमतर समझती है।

लैंगिक असमानता का असर सिर्फ़ औरतों तक महदूद नहीं रहता, बल्कि पूरा समाज इसकी क़ीमत अदा करता है। जब आबादी का आधा हिस्सा अपने हुनर और क़ाबिलियत का पूरा इस्तेमाल नहीं कर पाता, तो मुल्क की तरक़्क़ी रुक जाती है। मआशी (आर्थिक) तरक़्क़ी के लिए ज़रूरी है कि औरतों को बराबर मौके दिए जाएँ। जब औरत तालीमयाफ़्ता और खुदमुख्तार होती है, तो वह अपने खानदान की सेहत, बच्चों की तालीम और घरेलू मआश को बेहतर बनाती है।

तालीम लैंगिक समानता की बुनियादी चाबी है। इल्म इंसान को अपने हक़ूक़ और ज़िम्मेदारियों से आगाह करता है। अगर लड़कियों को अच्छी और मुकम्मल तालीम मिले, तो वे न सिर्फ़ अपने लिए, बल्कि पूरे समाज के लिए रोशनी का सबब बनती हैं। सरकारी स्कीमें और मुहिमें भी इसी मक़सद से चलाई गई हैं कि बेटियों को तालीम और तहफ़्फ़ुज़ मिले, ताकि वे अपने ख्वाबों को हक़ीक़त में बदल सकें।

सियासत और हुकूमत में औरतों की शिरकत भी बेहद अहम है। पंचायत और स्थानीय निकायों में आरक्षण ने औरतों को क़यादत (नेतृत्व) का मौका दिया है। इससे उनकी आवाज़ को तवज्जो मिली है और फैसलों में उनकी भागीदारी बढ़ी है। हालांकि अब भी ऊँचे सियासी ओहदों पर उनकी तादाद कम है, मगर यह सफ़र जारी है और उम्मीद की जा सकती है कि आने वाले दिनों में हालात बेहतर होंगे।

मीडिया और अदब (साहित्य) का भी बड़ा किरदार है। अगर फ़िल्मों, धारावाहिकों और इश्तेहारों में औरत को सिर्फ़ घरेलू किरदार में दिखाया जाएगा, तो वही तस्वीर समाज के ज़हन में बैठेगी। लेकिन अगर उसे मज़बूत, खुद्दार और फ़ैसले लेने वाली शख्सियत के रूप में पेश किया जाए, तो यह सोच में तब्दीली ला सकता है।

लैंगिक समानता का मतलब यह भी है कि मर्दों की भूमिका को नए सिरे से समझा जाए। समाज में अक्सर मर्द पर घर की सारी मआशी ज़िम्मेदारी डाल दी जाती है, जिससे उस पर दबाव बढ़ता है। अगर ज़िम्मेदारियाँ तक़सीम हों–घर और बाहर दोनों जगह–तो रिश्ता ज्यादा मज़बूत और पुरसुकून बन सकता है। बराबरी का मतलब मुकाबला नहीं, बल्कि तआवुन (सहयोग) है।

सेहत के मैदान में भी बराबरी ज़रूरी है। औरतों को बेहतर इलाज, पोषण और मानसिक सेहत की सहूलियतें मिलनी चाहिए। कई बार शर्म या सामाजिक दबाव की वजह से वे अपनी बीमारी छुपा लेती हैं, जो आगे चलकर गंभीर मसला बन जाती है। जागरूकता और सहूलियत दोनों का इंतज़ाम ज़रूरी है।

डिजिटल दौर में टेक्नोलॉजी भी सशक्तिकरण का ज़रिया बन सकती है। अगर औरतों को इंटरनेट और डिजिटल तालीम की पहुंच मिले, तो वे ऑनलाइन कारोबार, फ्रीलांसिंग और ई-लर्निंग के ज़रिये अपने पाँव पर खड़ी हो सकती हैं। डिजिटल गैप को कम करना भी बराबरी की जंग का अहम हिस्सा है।

आख़िर में यह कहना मुनासिब होगा कि लैंगिक समानता सिर्फ़ औरतों का मसला नहीं, बल्कि पूरी इंसानियत का मसला है। यह इंसाफ़, इज़्ज़त और बराबरी की बुनियाद पर खड़ा एक ख़्वाब है, जिसे हक़ीक़त में बदलने के लिए हर फ़र्द को अपना किरदार अदा करना होगा। जब समाज यह तस्लीम कर लेगा कि औरत और मर्द दोनों बराबर हैं, तभी असली तरक़्क़ी और खुशहाली मुमकिन होगी।बराबरी का पैग़ाम यही है कि हर इंसान को, चाहे वह किसी भी लिंग का हो, अपने सपनों को जीने का हक़ मिले। यही एक इंसाफ़पसंद, रोशनख़्याल और कामयाब समाज की असली पहचान है।

मनजीत सिंह
कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस - जीवन में वैज्ञानिक विवेक एवं दृष्टिकोण आवश्यक

विज्ञान मानव को जीवन जीने की एक दृष्टि देता है। चिंतन की आधारभूमि भेंट कर चलने को उजास भरा पथ प्रदान करता है। वास्तव में विज्ञान जीवन से जडता, अविद्या, अंधविश्वास, अतार्किता एवं संशय से मुक्ति का नाम है। विज्ञान व्यक्ति को तर्कशील एवं प्रयोगधर्मी बनाकर सवाल खड़े करने की सामर्थ्य पैदा करता है। विज्ञान मानवीय मेधा का उच्चतम आदर्श है। वसुधा के सौंदर्य को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए प्राणिमात्र के लिए प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपभोग का मार्गदर्शन ही विज्ञान है। विज्ञान में समस्या है तो समाधान भी, कल्पना है तो प्रयोग भी। सवाल हैं तो उत्तरों की तह तक पहुंच सत्य का साक्षात्कार करने का सत्संकल्प भी।

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के माध्यम से हम इस भाव एवं चेतना को सिंचित कर समृद्ध करते हैं। राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद् एवं विज्ञान मंत्रालय द्वारा युवाओं एवं बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं विज्ञान अध्ययन के प्रति रुचि उत्पन्न करने के उद्देश्य से 1986 से प्रत्येक वर्ष 28 फरवरी को राष्ट्रीय विज्ञान दिवस मनाया जाता है। उल्लेखनीय है कि 28 फरवरी, 1928 को ही सी.वी. रमन ने लोक सम्मुख अपनी विश्व प्रसिद्ध खोज 'रमन प्रभाव' की घोषणा की थी। 'रमन प्रभाव' के लिए ही 1930 में सी.वी. रमन को नोबेल पुरस्कार मिला था। सी.वी. रमन एशिया के पहले भौतिक शास्त्री थे जिन्हें नोबेल पुरस्कार मिला है। अमेरिकन केमिकल सोसायटी ने 1998 में 'रमन प्रभाव' को अन्तरराष्ट्रीय विज्ञान के इतिहास की एक युगान्तरकारी घटना के रूप में स्वीकार किया। राष्ट्रीय विज्ञान दिवस वास्तव में 'रमन प्रभाव' के स्मरण के साथ ही मानव जीवन के सम्यक विकास के लिए वैज्ञानिक विवेक, चिंतन एवं दृष्टिकोण अपनाने का दिन है, जिसकी हमें जरूरत है।

चंद्रशेखर वेंकटरमन का जन्म 7 नवम्बर, 1888 को तमिलनाडु में कावेरी के तट पर स्थित तिरुचिरापल्ली नामक स्थान पर एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपकी माता पार्वती अम्मा कुशल गृहिणी एवं पिता चन्द्रशेखर भौतिकशास्त्र एवं गणित के प्राध्यापक थे। घर पर एक समृद्ध लघु पुस्तकालय था तो तार वाद्ययंत्रों का संचय भी। संगीत में रुचि के चलते वीणा वादन पिता जी की नित्य साधना थी। वीणा के तारों के कम्पन से निकली मधुर ध्वनि बालक रमन को अपनी ओर खींचती। वह सोचते कि इन तारों को छेड़ने से एक विशेष लय, प्रवाह, आरोह-अवरोह में मनमोहक ध्वनि कैसे उत्पन्न हो सकती है। यही जिज्ञासा बाद में उनके ध्वनि सम्बंधी शोधों का आधार भी बनी। चार वर्ष की उम्र में ही पिता का तबादला विशाखापट्टनम हो जाने से रमन की प्रारंभिक शिक्षा भी वहीं शुरू हुई। यहां घर के सामने लहराता सागर का नीला जल रमन का ध्यान आकर्षित करता। बालमन सोचता कि घर और सागर के जल में यह अन्तर कैसे। मकान की खिड़की से वह सागर की लहरों को अठखेलियां करते देखते रहते मानो जल के नीलेपन के रहस्य का कोई तोड़ खोज रहे हों। रमन ने मद्रास के प्रेसिडेंसी कॉलेज में 1903 में बी.ए. में प्रवेश लिया और विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी में प्रथम आकर गौरव अर्जित किया। 1907 में एम.ए. गणित प्रथम श्रेणी में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण किया। परास्नातक करते समय ही 1906 में 'प्रकाश विवर्तन' विषय पर शोध पत्र लिखा जो लंदन से प्रकाशित विश्व प्रसिद्ध पत्रिका 'फिलसोफिकल मैगजीन' में छपा। 1907 में ही आपने असिस्टेंट एकाउंटेंट जनरल के रूप में कलकत्ता में कार्यभार ग्रहण किया। पर रमन का मन तो विज्ञान की दुनिया में ही रमा था। फलतः एक दिन कार्यालय से घर आते समय वर्ष 1876 में स्थापित 'इंडियन एसोसिएशन फार दि कल्टीवेशन ऑफ साइंस' की प्रयोगशाला में सुबह-शाम चार-चार घंटे 'ध्वनि में कम्पन एवं कार्य' के क्षेत्र में प्रयोग करने लगे। वह स्कूली बच्चों को प्रयोगशाला लाकर विज्ञान के विभिन्न प्रयोग करके दिखाते ताकि बच्चे विज्ञान की दुनिया को करीब से देख-परख सकें।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति आशुतोष मुखर्जी के कहने पर 1917 में आपने नौकरी से त्यागपत्र देकर भौतिकी का प्राध्यापक बनना स्वीकार कर लिया। 1921 में ब्रिटेन में आयोजित अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालयों के कांग्रेस में कलकत्ता विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व करने हेतु ऑक्सफोर्ड जाना हुआ। लौटते समय भूमध्य सागर के जल का नीलापन देखकर आप आश्चर्यचकित रह गए। विचार किया कि समुद्र के जल में नीलापन किस कारण से है। उपकरण लेकर आप जहाज के डेक पर आ गये और घंटों सिन्धु जल का अवलोकन-निरीक्षण और प्रयोग करते रहे। इस दौरान पूर्व में विज्ञानवेत्ताओं द्वारा खोजे गये सिद्धांत और निष्कर्ष आंखों के सामने घूमते रहे कि जल का नीलापन समुद्र के अन्दर से प्रकट हो रहा है। पर आप उनसे सहमत नहीं हो पा रहे थे। तब रमन ने इस रहस्य की खोज करने का संकल्प लिया और भारत आकर आपने प्रयोगशाला में 1921 से 1927 तक शोध किया जिसकी परिणति 'रमन प्रभाव' के रूप में हुई। 'रमन प्रभाव' प्रकाश का विभिन्न माध्यमों से गुजरने पर उसमें होने वाले भिन्न-भिन्न प्रकीर्णन के कारणों का अध्ययन है। सात साल की साधना का फल 'रमन प्रभाव' पर आधारित शोध पत्र 'नेचर' पत्रिका में सर्वप्रथम छपा था। 1924 में आपको रॉयल सोसायटी ऑफ लंदन का फैलो बनाया गया। 1927 में जर्मनी ने जर्मन भाषा में भौतिकशास्त्र का बीस खंडों का एक विश्वकोश प्रकाशित किया। इसमें वाद्य यंत्रों से सम्बंधित आठवें खंड का लेखन रमन द्वारा किया गया। यह उल्लेखनीय है कि इस विश्वकोश को तैयार करने वाले आप एकमात्र गैर जर्मन व्यक्ति थे। उनके 2000 शोध पत्र विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय जर्नल में प्रकाशित हुए। 1948 में आपने सेवानिवृत्ति के बाद बेंगलुरु में 'रमन शोध संस्थान' की स्थापना की।

भारत सरकार ने 1954 में महान कर्मयोगी विज्ञानी रमन के योगदान और वैज्ञानिक उपलब्धियों का वंदन करते हुए 'भारत रत्न' पुरस्कार प्रदान किया। रूस ने 1957 में 'लेनिन शंन्ति पुरस्कार' भेंटकर सम्मानित किया। संचार मंत्रालय ने 20 पैसे का एक टिकट जारी कर आपकी स्मृति को अक्षुण्ण बना दिया। विश्व का यह महान भौतिकविद् 21 नवम्बर, 1970 को अपना लौकिक जीवन पूर्ण कर हमें अकेला छोड़ अंतिम यात्रा पर प्रस्थान कर गया। लेकिन जब तक दुनिया में भौतिकी का अध्ययन होता रहेगा, तब तक 'रमन प्रभाव' अमर रहेगा और चन्द्रशेखर वेंकट रमन भी कोटि उरों में जीवित एवं श्रद्धास्पद बने रहेंगे।।

प्रमोद दीक्षित मलय
संस्थापक शिक्षक एवं शैक्षिक संवाद मंच
बांदा, उ.प्र. मोबा - 9452085234

आत्महत्या एक ऐसा कार्य है

जिसको समाज निषेध करता है

करता है। वह छोटी-सी छोटी चोट से भी बचना चाहता है। अनेक बार देखा गया है कि किसी दुर्घटना के कारण किसी व्यक्ति के कुछेक अङ्ग बेकार हो जाते हैं। तब डॉक्टर व्यक्ति से पूछता है कि तुम्हारी टाँग काटनी पड़ेगी? तब व्यक्ति डॉक्टर से पूछता है कि क्या मैं टाँग कटने पर जीवित रहूँगा? डॉक्टर कहता है - हाँ। इसके बाद क्रमशः दूसरी टाँग और एक बाँह काटने के लिए भी डॉक्टर व्यक्ति से पूछता है।

इस पर भी वह व्यक्ति डॉक्टर से यही पूछता है कि क्या इन अङ्गों के कटने पर भी मैं जीवित रह पाऊँगा? जब उसे जीवित रहने का आश्वासन मिल जाता है, तब वह अपने अङ्गों को काटने की अनुमति दे देता है। इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि सामान्य दशाओं में भी व्यक्ति हर कीमत पर जीवित रहना चाहता है, भले ही उसके अङ्ग-भङ्ग हो जाएँ। जीवन को बनाए रखना प्राणियों की मूल प्रवृत्ति है। लेकिन फिर भी बहुत बार इसके विपरीत प्रवृत्ति भी मानव में पाई जाती है। कुछ लोग आत्महत्या करते हुए भी पाये जाते हैं। यह एक असामान्य घटना है, परन्तु सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। इस असामान्य प्रवृत्ति का सम्बन्ध पूरे समाज से होता है। चूँकि समाज आत्महत्या करने वाले व्यक्ति को प्रभावित करता है और व्यक्ति की आत्महत्या से पूरा समाज प्रभावित होता है, इसीलिए इस समस्या को सामाजिक समस्या माना जाता है।

फ्रांस में समाजशास्त्र के प्रथम प्रोफेसर और संरचनात्मक प्रकार्यवाद के संस्थापक 'डेविड इमाइल दुर्खीम' (David Emile Durkheim - जन्म : 15 अप्रैल 1858, निधन : 15 नवम्बर 1917) आधुनिक समाजशास्त्र के प्रमुख शिल्पियों में से एक हैं। उन्होंने सामाजिक तथ्यों, श्रम-विभाजन और आत्महत्या जैसे प्रमुख सिद्धान्तों के माध्यम से इस विषय को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। उन्होंने आत्महत्या का विशद विवेचन एवं विश्लेषण अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सुसाइड' (Suicide) में प्रस्तुत किया है। उनका आत्महत्या सम्बन्धी सिद्धान्त समूहवाद पर आधारित है।

समूहवाद के अन्तर्गत यह माना जाता है कि व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया-कलाप उसके समूह से प्रभावित होता है। वस्तुतः व्यक्ति का कार्य समूह की क्रिया की प्रतिक्रिया स्वरूप होता है। दुर्खीम के शब्दों में - 'आत्महत्या एक ऐसा कार्य है, जिसका समाज निषेध करता है।' दुर्खीम ने यह भी लिखा है कि आत्महत्या के विषय में अन्य सभी विचारक तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से बँधे हुए हैं और समष्टिगत चेतना के दर्पण हैं। आत्महत्या के समस्त तथाकथित कारण समष्टिगत मस्तिष्क के आन्तरिक चेतन कारण को प्रकट करते हैं।

दुर्खीम ने आत्महत्या के कारण बतलाने में भौगोलिक सिद्धान्त की आलोचना की है। आत्महत्या के भौगोलिक सिद्धान्तों के अनुसार दिसम्बर-जनवरी के जाड़ों के महीनों की तुलना में आत्महत्या की दरें मई-जून के गर्म महीनों में बढ़ जाती हैं। इसके विरुद्ध दुर्खीम ने यह लिखा है कि यद्यपि यह ठीक है कि दिसम्बर-जनवरी की तुलना में मई-जून में आत्महत्या की दरें अधिक होती हैं, तथापि मौसम की दशाएँ आत्महत्या के वास्तविक कारण नहीं हैं, वे केवल सतह पर देखने वाले को ही कारण दिखलाई पड़ती है। वास्तविक कारण यह है कि गर्मी के महीनों में व्यक्तियों के सामाजिक कार्य बढ़ जाते हैं। अतः गर्मी नहीं, अपितु सामाजिक प्रभाव ही आत्महत्या का कारण है।

आत्महत्या के विषय में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का खण्डन करते हुए दुर्खीम ने मनोवैज्ञानिक कारकों तथा यौन सम्बन्धी कारकों को सामाजिक सम्बद्धता के आधार पर समझाया है। यह कहा जाता है कि महिलाओं की तुलना में पुरुष अधिक आत्महत्या करते हैं। लैङ्गिक अन्तर को इस अन्तर का कारण बतलाया जाता है, लेकिन दुर्खीम के अनुसार वास्तविक कारण पुरुषों और महिलाओं में लैङ्गिक अन्तर न होकर यह तथ्य है कि पुरुष सामाजिक परिस्थितियों के प्रति अधिक सजग होते हैं। इसी भाँति कोई निराश व्यक्ति इसलिये आत्महत्या नहीं करता कि वह निराश है, अपितु सामाजिक परिस्थितियों में तीव्र संवेदनशीलता के कारण ऐसा करता है।

दुर्खीम के सिद्धान्तों की विशेष आलोचना हुई है। दुर्खीम ने आत्महत्या के कारकों के विश्लेषण के अन्तर्गत केवल और केवल सामाजिक कारकों को ही महत्वपूर्ण माना है। वास्तव में दुर्खीम का यह विचार एकाङ्गी है। आत्महत्या के पीछे सामाजिक कारक का महत्व होते हुए भी उसे एक मात्र कारक नहीं कहा जा सकता। सामाजिक कारक के साथ-साथ अन्य कारक जैसे - धार्मिक, आर्थिक, पारिवारिक, मानसिक, शारीरिक आदि भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दुर्खीम का अभिमत सत्य होते हुए भी न तो पूर्ण है और न ही सर्वांग। अतएव निर्विवाद रूप से समाज आत्महत्या के लिये प्रेरित अनेक कारकों में से एक कारक हो सकता है, लेकिन एक मात्र कारक कदापि नहीं।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आत्महत्या केवल किसी व्यक्ति का निजी निर्णय नहीं, बल्कि समाज से गहराई से जुड़ी हुई एक सामाजिक परिघटना है। मनुष्य की मूल प्रवृत्ति जीवन की रक्षा करना है; वह अङ्ग-भङ्ग जैसी पीड़ादायक स्थितियों में भी जीवित रहने का प्रयास करता है। इसके बावजूद जब कोई व्यक्ति आत्महत्या जैसा कठोर कदम उठाता है, तो उसके पीछे व्यक्तिगत पीड़ा के साथ-साथ सामाजिक कारण भी सक्रिय रहते हैं। दुर्खीम ने वैज्ञानिक दृष्टि से यह सिद्ध किया कि व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक वातावरण, समूह-संबंधों, सामाजिक एकात्मता और नैतिक नियंत्रण से प्रभावित होता है। जहाँ सामाजिक बन्धन कमजोर पड़ते हैं या व्यक्ति स्वयं को समाज से कटा हुआ अनुभव करता है, वहाँ आत्महत्या की प्रवृत्ति प्रबल हो सकती है।

अतः आत्महत्या की समस्या को केवल नैतिक उपदेशों या व्यक्तिगत दुर्बलता का प्रश्न मानकर नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि इसे सामाजिक संरचना, पारिवारिक सहयोग, सामाजिक संवेदना और मानसिक स्वास्थ्य-समर्थन के व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझना आवश्यक है। समाज का दायित्व है कि वह पीड़ित व्यक्ति को उपेक्षा नहीं, बल्कि सहानुभूति, संवाद और सहारा प्रदान करे, ताकि जीवन के प्रति उसकी आशा पुनः जागृत हो सके। **डॉ. रामनाथ शर्मा और डॉ. राजेन्द्र के० शर्मा की कृति 'प्रमुख सामाजिक विचारक' पर आधारित।**

डॉ. गौतमसिंह पटेल 'सालर'
सारंगढ़ - बिलाईगढ़, छत्तीसगढ़.

सिखाया जाए, पर निर्भरता न बनेः

तकनीक का युग है, और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) अब केवल विज्ञान कथा नहीं, बल्कि हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बन चुकी है। शिक्षा जगत भी इससे अछूता नहीं है। परंतु एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है–क्या ढ्ढ को तुरंत शिक्षा में पूर्ण रूप से लागू कर देना चाहिए, या पहले छात्रों की बौद्धिक क्षमता और रचनात्मकता को मजबूत किया जाना चाहिए?

शिक्षा का मूल उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि सोचने की क्षमता विकसित करना है। यदि छात्र प्रारंभ से ही ढ्ढ पर निर्भर हो जाएँ, तो उनकी स्वाभाविक जिज्ञासा, विश्लेषण शक्ति और रचनात्मकता प्रभावित हो सकती है। इतिहास साक्षी है कि महान आविष्कार और विचार मानव मस्तिष्क की गहराई से उत्पन्न हुए हैं, न कि किसी स्वचालित उपकरण से।

यह सत्य है कि(AI) आधुनिक जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। परंतु इसका उपयोग साधन के रूप में होना चाहिए, आधार के रूप में नहीं। जैसे कैलकुलेटर गणना में सहायता करता है, परंतु गणितीय समझ का स्थान नहीं ले सकता; उसी प्रकार(AI) भी सीखने की प्रक्रिया का सहयोगी होना चाहिए, प्रतिस्थापक नहीं।

विद्यालयी शिक्षा के स्तर पर विद्यार्थियों को पहले मूलभूत कौशल–तर्कशक्ति, कल्पनाशीलता, भाषा दक्षता और समस्या समाधान क्षमता–का विकास करना चाहिए। यदि प्रारंभिक अवस्था में ही(AI) का अत्यधिक प्रयोग किया जाए, तो छात्र स्वयं सोचने के बजाय तैयार उत्तरों पर निर्भर हो सकते हैं। इससे शिक्षा की आत्मा कमजोर हो सकती है।

विशेष रूप से प्रबंधन और उच्च शिक्षा में भी (AI) का अंधाधुंध उपयोग सावधानीपूर्वक विचार की मांग करता है। शिक्षा केवल डेटा और तकनीक का खेल नहीं है; यह मानवीय संवेदनाओं, अनुभवों और मौलिक चिंतन का संगम है।(AI) से दक्षता बढ़ सकती है, परंतु नवाचार और अंतर्दृष्टि अभी भी मानव मस्तिष्क की देन है।

शिक्षकों की भूमिका भी इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। उन्हें ढ्ढ को एक सहायक उपकरण के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए, न कि एक अंतिम समाधान के रूप में। छात्रों को यह समझाना आवश्यक है कि तकनीक का सही उपयोग तभी संभव है जब उसके पीछे मजबूत बौद्धिक आधार हो।

भविष्य निश्चित रूप से तकनीक-प्रधान होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। परंतु यदि शिक्षा केवल तकनीकी उपकरणों पर आधारित हो जाएगी, तो 'प्रबंधित शिक्षा' (Managed Education) का खतरा उत्पन्न हो सकता है, जहाँ स्वतंत्र सोच की जगह संरचित और पूर्वनिर्धारित उत्तर हावी हो जाएँगे। अतः शिक्षा की दिशा स्पष्ट होनी चाहिए–पहले सोच, फिर तकनीक; पहले रचनात्मकता, फिर कृत्रिम बुद्धिमत्ता।(AI) को शिक्षा में स्थान अवश्य मिलना चाहिए, परंतु वह गुरु नहीं, सहायक होना चाहिए।

आनंद मोहन मिश्र
विवेकानंद केंद्र विद्यालय जयरामपुर
चांगलांग जनपद, अरुणाचल प्रदेश
दूरभाष - 9436870174